वायडगच्छ का इतिहास

शिवप्रसाद

गुजरात के प्राचीन और मध्ययुगीन नगरों तथा ग्रामों से अस्तित्व में आये चैत्यवासी श्वेताम्बर जैन गच्छों में थारापद्र[1] और मोढगच्छ[2] के पश्चात् वायडगच्छ का नाम उल्लेखनीय है। वायड (वायट) नामक स्थान से अस्तित्व में आने के कारण इस गच्छ का उक्त नाम और उसका पर्याय वायटीय प्रसिद्ध हुआ। ब्राह्मणीय और जैन साक्ष्यों के अनुसार पूर्वकाल में वायड महास्थान[3] के रूप में विख्यात रहा।

वायडगच्छ के सम्बद्ध अभिलेखीय साक्ष्यों के रूप में कुछ प्रतिमालेखों का उल्लेख किया जा सकता है जो पीतल की जिनप्रतिमाओं पर उत्कीर्ण हैं। इनमें से प्रथम लेख भरूच से प्राप्त वि. सं. १०८६/ ई. स. १०३० की एक जिनप्रतिमा पर उत्कीर्ण है[4]। द्वितीय लेख साणंद से प्राप्त वि. सं. ११३१/ ई. स. १०७५ की एक जिनप्रतिमा पर खुदा हुआ है[5]। तृतीय[6] और चतुर्थ[7] लेख शत्रुञ्जय से प्राप्त वि. सं. ११२९ और वि. सं. ११३२ की जिनप्रतिमाओं से ज्ञात होते हैं। इस प्रकार उक्त साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि ईस्वी सन् की ११वीं शती में यह गच्छ सुविकसित स्थिति में विद्यमान था।

मध्ययुगीन प्रबन्धग्रन्थों में वायडगच्छ के मुनिजनों के सम्बन्ध में वर्णित प्रशंसात्मक विवरणों से प्रतीत होता है कि इस गच्छ के मुनि चैत्यवासी थे।

वायडगच्छ के प्रधानकेन्द्र वायडनगर में जीवन्त-स्वामी का एक मंदिर था। **कल्पप्रदीप** (ई. स. १३३३) में उल्लिखित चौरासी तीर्थस्थानों की सूचि में इसका नाम मिलता है[8]। **पुरातनप्रबन्धसंग्रह** (ई. स. १५वीं शती) में मंत्री उदयन के पुत्र वाग्भट्ट के संदर्भ में वायटस्थित जीवन्तस्वामी, मुनिसुव्रत और महावीर के मन्दिरों का उल्लेख मिलता है[9]। अंचलगच्छीय महेन्द्रसूरिकृत **अष्टोत्तरीतीर्थमाला** (ई. स. १२३७) में भी इसी प्रकार का विवरण प्राप्त होता है[10]। इससे पूर्व संगमसूरि के **चैत्यपरिपाटीस्तवन** (ई. स. १२वीं शताब्दी) में वांयड का महातीर्थ के रूपमें वर्णन मिलता है[11]। साधारणांक सिद्धसेनसूरि द्वारा रचित **सकलतीर्थस्तोत्र** (प्राय: ई. स. १०६०-७५) में भी इस स्थान का एक जैन तीर्थ के रूपमें उल्लेख है[12]।

प्रभावकचरित (वि. सं. ११३४ / ई. स. १२७८) के अनुसार विक्रमादित्य के मंत्री लिम्बा द्वारा यहाँ स्थित महावीर जिनालय का जीर्णोद्धार कराया गया[13]। वहाँ यह भी कहा गया कि उसने राशिल्लसूरि के शिष्य और जिनदत्तसूरि के प्रशिष्य जीवदेवसूरि को उक्त जिनालय का अधिष्ठाता नियुक्त किया। **प्रबन्धकोश** (वि. सं. १४०५ / ई. स. १३४९) में भी यही बात कही गयी है किन्तु वहाँ मंत्री का नाम निम्बा बतलाया गया है[14] जो अक्षरान्तर मात्र है।

प्रबन्धग्रन्थों के उक्त उल्लेखों में वर्णित कथानक में विक्रमादित्य (चन्द्रगुप्त 'द्वितीय' विक्रमादित्य— ई. स. ३७५-४१२) के काल की कल्पना की गयी है जिसको हम स्वीकार नहीं कर सकते तो भी इतना संभव हो सकता है कि नवीं शताब्दी के किसी प्रतिहार नरेश के प्राकृत नामधारी मंत्री निंबा या लिंबा ने उक्त जिनालय का निर्माण कराया होगा और यही तो जीवदेवसूरि का संभावित समय भी है[15]।

प्रभावकचरित[16] में वायडगच्छ के प्रारम्भिक आचार्यों के सम्बन्ध में प्राप्त विवरण-जिसका एक अंश कथानक ही है, से ज्ञात होता है कि वायड नामक ग्राम में धर्मदेव नामके एक श्रेष्ठी थे। उनके बडे पुत्र का नाम महीधर और छोटे पुत्र का नाम महीपाल था। महीधर ने श्वेताम्बर जैनाचार्य जिनदत्तसूरि से दीक्षा ग्रहण कर ली और राशिल्लसूरि के नाम से विख्यात हुए। छोटे पुत्र महीपाल ने राजगृह (संभवत: वर्तमान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजोरगढ, राजस्थान) के दिगम्बर आचार्य श्रुतकीर्ति से दीक्षा लेकर सुवर्णकीर्ति नाम प्राप्त किया। आगे चलकर सुवर्णकीर्ति ने श्वेताम्बर सम्प्रदाय में अपनी आस्था व्यस्त की और अपने संसारपक्षीय भ्राता राशिल्लसूरि के पास दीक्षित हो कर जीवदेवसूरि के नाम से प्रसिद्ध हुए। निम्बा द्वारा कराये गये जीर्णोद्धार से पूर्व भी उक्त जिनालय जीवदेवसूरि के अधिकार में था। **प्रभावकचरित** के इसी चरित में आगे लल्ल नामक एक ब्राह्मण धर्मानुयायी श्रेष्ठी का विवरण है जिसने यज्ञ में होनेवाली हिंसा को देखकर जैन धर्म स्वीकार किया और महावीर का एक मन्दिर बनवाया[१७]। इससे नाराज ब्राह्मणों ने वहाँ द्वेषवश रात्रि में एक मृत गाय रख दिया, किन्तु जीवदेवसूरि की चमत्कारिक शक्ति से वह गाय उठी और निकटस्थित ब्रह्मा के मन्दिर में जाकर गिर पड़ी। बाद में दोनों पक्षों में हुए समझौते की शर्तों से स्पष्ट होता है कि इस गच्छ के अनुयायी मुनिजन चैत्यवासी परम्परा से संबद्ध थे।

अमरचन्द्रसूरि कृत **पद्मानंदमहाकाव्य** (वि॰ सं॰ १२९७ के पूर्व) की प्रशस्ति[१८] में भी कुछ परिवर्तन के साथ उक्त कथानक प्राप्त होता है। वहाँ ब्रह्मा का मंदिर न कहके ब्रह्मशाला कहा गया है[१९]। उन्होंने इस गच्छ के प्रारम्भिक आचार्यों का जो क्रम बतलाया है वह **प्रभावकचरित** में भी मिलता है। अमरचन्द्रसूरि ने इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण बात यह बतलायी है कि वायडगच्छ में पट्टधरआचार्यों को जिनदत्तसूरि, राशिल्लसूरि और जीवदेवसूरि — ये तीन नाम पुनः पुनः प्राप्त होते हैं[२०]। जब कि यह नियम अमरचन्द्रसूरि के बारे में नहीं लागू हुआ। यद्यपि उनके तीन पूर्ववर्ती आचार्यों का क्रम वैसा ही रहा जैसा कि उन्होंने बतलाया है। अमरचन्द्रसूरि के गुरु का नाम जिनदत्तसूरि था। जिनदत्तसूरि के गुरु का नाम जीवदेवसूरि और प्रगुरु का नाम राशिल्लसूरि था। जिनदत्तसूरि वि॰ सं॰ १२६५ / ई॰ स॰ १२०९ में गच्छनायक बनें[२१]। अरिसिंह द्वारा रचित **सुकृतसंकीर्तन**[२२] (वि॰ सं॰ १२८७ / ई॰ स॰ १२३१ लगभग) के अनुसार इन्होंने ई॰ स॰ १२३० में मंत्री वस्तुपाल के संघ में शत्रुंजय और गिरनार की यात्रा की थी[२३]। **विवेकविलास** की संक्षिप्त प्रशस्ति में उन्होंने स्वयं को जीवदेवसूरि और उनके गुरु राशिल्लसूरि की परम्पराका बतलाया है[२४]।

यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या इस गच्छ के प्रारंभिक आचार्यों का भी नाम और पट्टक्रम ठीक उसी प्रकार का रहा जैसा कि १२-१३वीं शती में हम देखते हैं। वस्तुतः यह जीवदेवसूरि 'प्रथम' की ऐतिहासिकता और उनसे सम्बन्धित विभिन्न कथानकों का विकास १३वीं शताब्दी में श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय में उस महान् आचार्य के प्रति व्यक्त श्रद्धा और सम्मान का परिणाम माना जा सकता है। १३वीं शताब्दी के पूर्व भी श्वेताम्बर ग्रन्थकारों ने इनका अत्यन्त सम्मान के साथ उल्लेख किया है। हर्षपुरीयगच्छ के लक्ष्मणगणि ने प्राकृतभाषा में रचित **सुपासनाहचरिय** (**सुपार्श्वनाथचरित**, रचनाकाल ई॰ स॰ ११३७) में अत्यन्त आदर के साथ इनके साहित्यिक क्रियाकलापों का वर्णन किया है[२५]। उपाध्याय चन्द्रप्रभ द्वारा प्रणीत **वासुपूज्यचरित** की प्रशस्ति में सस्नेह इनका उल्लेख है[२६]। परमारनरेश भोज (ई॰ स॰ के दरबारी कवि धनपाल ने भी अपनी अमर कृति **तिलकमंजरी** (प्रायः ई॰ स॰ १०२०-२५) में जीवदेवसूरि का अन्य प्रसिद्ध कवियों के साथ सादर स्मरण किया है[२७]। इनसे भी पूर्व चन्द्रगच्छीय गोग्गटाचार्य के शिष्य समुद्रसूरि (प्रायः वि॰ सं॰ १००६ / ई॰ स॰ ९५०) ने जीवदेवसूरि द्वारा प्रणीत **जिनस्नात्रविधि** पर टिप्पण की रचना की है[२८]।

वि॰ सं॰ १२९८ में महामात्य वस्तुपाल द्वारा शत्रुंजय महातीर्थ पर उत्कीर्ण कराये गये शिलालेख में अन्य गच्छों के आचार्यों के साथ वायडगच्छीय जीवदेवसूरि का भी नाम मिलता है[२९]।

उक्त साक्ष्यों के आधार पर इस गच्छ के आचार्यों के गुरु-परम्परा की एक तालिका निर्मित की जा सकती है, जो इस प्रकार है :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

?

↓

जिनदत्तसूरि

↓

राशिल्लसूरि

↓

जीवदेवसूरि 'प्रथम' (**जिनस्नात्रविधि** के रचनाकार, अनुमानितकाल वि॰ सं॰ की नवीं-दसवीं शताब्दी)

↓

जिनदत्तसूरि (षष्ठ) ई॰ स॰ १२०९ में **विवेकविलास** और **शकुनशास्त्र**, के रचनाकार)

अमरचन्द्रसूरि (**बालभारत**, **पद्मानन्दमहाकाव्य**, **काव्यकल्पलता**, **काव्यकल्पलतावृत्ति**, **काव्यकल्पलतापरिमल** आदि ग्रन्थों के रचनाकार)

राशिल्लसूरि

|

जीवदेवसूरि (वि॰ सं॰ १२९८ के (सप्तम) शत्रुंजय के शिलालेख में उल्लिखित)

वायडगच्छ से सम्बद्ध कुछ अन्य अभिलेखीय साक्ष्य भी प्राप्त हुए हैं जो विक्रम सम्वत् की चौदहवीं शती तक के हैं । इनका संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है :

संवत्	तिथि	लेख का प्रकार	प्रतिष्ठास्थान	संदर्भग्रन्थ
११३९	अनुपलब्ध	पार्श्वनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	वीर जिनालय, अजारी	आबू भाग ५, लेखांक ३९८
११६१	कार्तिक...?		अजितनाथ जिनालय, सिरोही	**प्रतिष्ठालेख संग्रह** लेखांक १२
११६२	—	—	चन्द्रप्रभ जिनालय, जैसलमेर	**जैन लेख संग्रह** भाग-३ लेखांक २२१८
१२७३	कार्तिक सुदि १ गुरुवार		जैनमंदिर, शत्रुंजय मुनि यशोवर्धन की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	M. A. Dhaky and L. Bhojaka- "Some inscriptions on mount Śatrunjaya" M. J. V. G. V. Part 1 p. 162-69 No-7

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२९८	वैशाख वदि २ रविवार	पार्श्वनाथ की धातुप्रतिमा पर उत्कीर्णलेख	जैन देरासर, वणा, काठियावाड	**प्राचीन लेख संग्रह** लेखांक ३७
१२९८	—	शिलालेख	शत्रुंजय	U. P. Shah-"A Forgotten chapter in the history of Shvetambar Jaina Church" J. O. A. S. B. vol 30, part I, 1955 A. D., Pp-100-113.
१३००	वैशाख वदि ५ बुधवार	पार्श्वनाथ की प्रतिमा पर	अनुपूर्तिलेख, आबू	**आबू**, भाग २ लेखांक ५२६.
१३३५	—	—	अजितनाथ जिनालय, सिरोही	**प्रतिष्ठालेख संग्रह** लेखांक ७
१३३८	ज्येष्ठवदि १	शांतिनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्णलेख	चन्द्रप्रभ जिनालय, जैसलमेर	**जैनलेखसंग्रह** भाग ३, लेखांक २२३२
१३४९	चैत्रवदि ६ शनिवार	अमरचन्द्रसूरि की प्रतिमा पर उत्कीर्णलेख	टांगडियावाला जैनमंदिर, पाटण	**प्राचीन जैन लेखसंग्रह** भाग २, लेखांक ५२३

अंतिम दो प्रतिमालेखों को छोड़ कर शेष अन्य लेखों में यद्यपि इस गच्छ से सम्बद्ध कोई महत्त्वपूर्ण विवरण ज्ञात नहीं होता फिर भी वे लगभग १५० वर्षों तक इस गच्छ के स्वतंत्र अस्तित्व के प्रबल प्रमाण हैं। वि. सं. १३३८ के लेख से ज्ञात होता है कि इस गच्छ की पूर्व प्रचलित परिपाटी, जिसके अनुसार प्रतिमाप्रतिष्ठा का कार्य श्रावकों द्वारा होता था, को त्याग कर अब स्वयं मुनि या आचार्य द्वारा प्रतिपारित किया जाने लगा[३०]। वायडगच्छ का उल्लेख करने वाला अंतिम साक्ष्य इस गच्छ के प्रसिद्ध आचार्य जिनदत्तसूरि के ख्यातिनाम शिष्य प्रसिद्ध ग्रन्थकार अमरचन्द्रसूरि की पाषाण प्रतिमा पर उत्कीर्ण है। मुनि जिनविजयजी ने इस लेख की वाचना दी है[३१], जो निम्नानुसार है :

सं. १३४९ चैत्रवदि[६] शनौ श्री वायटीयगच्छे-श्री जिनदत्तसूरि शिष्य पंडित श्री अमरचन्द्रमूर्तिः पं. महेन्द्रशिष्यमंदनचंद्रख्या (ख्येन) कारिता शिवमस्तु ॥

इस प्रकार स्पष्ट है कि विक्रम संवत् की चौदहवीं शताब्दी में इस गच्छ के अनुयायियों ने अपने पूर्वगामी आचार्य की प्रतिमा निर्मित कराकर उनके प्रति पूज्यभाव एवं सम्मान व्यक्त किया।

इस गच्छ के प्रमुख ग्रन्थकारों का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है :

जीवदेवसूरि 'प्रथम' :

वायडगच्छ के पुरातन आचार्य जीवदेवसूरि 'परकायप्रवेशविद्या' में निपुण और अपने समय के प्रभावक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन मुनि थे । इनके गुरु का नाम राशिल्लसूरि और प्रगुरु का नाम जिनदत्तसूरि था । जैसा कि इसी लेख के अन्तर्गत पीछे कहा जा चुका है विभिन्न जैन ग्रन्थकारों—धनपाल, लक्ष्मणगणि, उपाध्याय चन्द्रप्रभ, प्रभाचन्द्र, राजशेखर आदि ने अपनी कृतियों में इनका सादर उल्लेख किया है । इनके द्वारा रचित केवल एक ही कृति आज मिलती है जिसका नाम है-**जिनस्नात्रविधि**[३२] । चन्द्रगच्छीय गोग्गटाचार्य के शिष्य समुद्रसूरि ने वि॰ सं॰ १००६ / ई॰ सन् ९५० में इस पर टिप्पण की रचना की[३३] । **प्रभावकचरित** और **प्रबन्धकोश में** इन्हें विक्रमादित्य समकालीन बतलाया गया है परन्तु वर्तमान युग के विद्वानों ने विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर इनका काल विक्रम संवत् की ८वीं-९वीं शताब्दी के आस-पास बतलाया है[३४], जो उचित प्रतीत होता है।

जिनदत्तसूरि :

महामात्य वस्तुपाल-तेजपाल के समकालीन वायडगच्छीय आचार्य जिनदत्तसूरि द्वारा प्रणीत **विवेकविलास**[३५] एवं **शकुनशास्त्र** ये दो कृतियाँ मिलती हैं । **विवेकविलास** की प्रशस्ति में इन्होंने अपने गुरु-परम्परा के बारे में संक्षिप्त जानकारी दी है[३६] जिसके अनुसार वायडगच्छ में राशिल्लसूरि नामक एक प्रसिद्ध आचार्य हुए । उनके शिष्य एवं पट्टधर जीवदेवसूरि परकायप्रवेशविद्या में निपुण थे । इसी परम्परा में आगे चलकर जिनदत्तसूरि हुए जिन्होंने उक्त ग्रन्थ की रचना की ।

प्राकृत भाषा में रचित इस ग्रन्थ में १२ अध्याय हैं जो उल्लास कहे गये हैं । इनमें कुल १३२३ श्लोक हैं । इस कृति में मानव-जीवन के उत्कर्ष के लिये कतिपय आवश्यक सभी तथ्यों का सारगर्भित विवरण है । प्रथम पाँच उल्लासों में दिनचर्या, छठें में ऋतुचर्या, सातवें में वर्ष चर्या, और आठवें में जन्मचर्या अर्थात् समग्र भव के जीवनव्यवहार का संक्षिप्त विवेचन है । नवें और दसवें उल्लास में अनुक्रम से पाप और पुण्य के कारणों का विवरण है । ग्यारह वें उल्लास में आध्यात्मिक विचार और ध्यान के स्वरूप का वर्णन है । अंतिम १२वें उल्लास में मृत्यु के समय के कर्तव्य तथा परलोक के साधनों की चर्चा है[३७] । कृति के अन्त में १० श्लोकों की प्रशस्ति दी गयी है । यह कृति वि॰ सं॰ १२७७ / ई॰ सन् १२२१ में रची गयी मानी जाती है[३८] । ब्राह्मणीय परम्परा के प्रसिद्ध ग्रन्थकार माधव[३९] (ई॰ स॰ की १४वीं शताब्दी) द्वारा प्रणीत **सर्वदर्शनसंग्रह** में भी आचार्य जिनदत्तसूरि की उक्त कृति का उल्लेख प्राप्त होता है[४०] ।

शकुनशास्त्र नौ प्रस्तावों में विभक्त पद्यात्मककृति है । इसमें संतान के जन्म, लग्न और शयन सम्बन्धी शकुन, प्रभात में उठने के समय के शकुन, दातून करने एवं स्नान करने के समय के शकुन, परदेश जाने एवं नगरमें प्रवेश करने के समय के शकुन आदि अनेक शकुन और उनके शुभाशुभ फल आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है[४१] ।

अमरचन्द्रसूरि :

वायडगच्छीय जिनदत्तसूरि के शिष्य और वाघेलानरेश बीसलदेव (वि॰ सं॰ १२९४-१३२८) और उनके मंत्री वस्तुपाल-तेजपाल द्वारा सम्मानित अमरचन्द्रसूरि उस युग के सर्वश्रेष्ठ विद्वानों में से थे । जैन श्रमण की दीक्षा लेने से पूर्व ये वायटीय ब्राह्मण थे । इन्होंने स्वरचित **बालभारत, पद्मानन्दमहाकाव्य काव्यकल्पलता, स्यादिशब्दसमुच्चय** आदि में अपने सम्बन्ध में कुछ जानकारी दी है । इसके अतिरिक्त परिवर्ती ग्रन्थकारों ने अपनी कृतियों यथा अरिसिंह द्वारा रचित **सुकृतसंकीर्तन,** मेरुतुंगसूरि द्वारा रचित **प्रबन्धचिन्तामणि,** राजशेखरसूरि द्वारा प्रणीत चतुर्विंशतिप्रबन्ध, रत्नमंदिरगणि द्वारा रचित **उपदेशतरंगिणी,** नयचन्द्रसूरि द्वारा रचित **हम्मीरमहाकाव्य** (रचनाकाल वि॰ सं॰ १४४४ के आसपास) आदि से भी इनके जीवन पर कुछ प्रकाश पडता है[४२] । वायड निवासी ब्राह्मणों के अनुरोध पर इन्होंने **महाभारत** पर पूर्वरूपेण आधारित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बालभारत नामक कृति की रचना की । मूल **महाभारत** की भाँति यह भी १८ पर्वों में विभाजित है । ये पर्व एक या अधिक सर्गों में विभाजित हैं । इनकी कुल संख्या ४४ है । सम्पूर्ण ग्रन्थ में ६९५० श्लोक हैं । **बालभारत** के रचनाकाल के सम्बन्ध में रचनाकार ने कोई उल्लेख नहीं किया है । इस सम्बन्ध में **चतुर्विंशतिप्रबन्ध**[४३] से विशेष जानकारी प्राप्त होती है । उसके अनुसार वीसलदेव के सम्पर्क में आने से पूर्व ही इन्होंनें **बालभारत** की रचना की थी । चूँकि वीसलदेव का शासनकाल (वि. सं. १२९४-१३२८ / ई. स. १२३८-१२७२) निश्चित है और अमरचन्द्रसूरि के गुरु जिनदत्तसूरि की कृति **विवेकविलास** का रचनाकाल वि. सं. १२७७ / ई. स. १२२१ गया है[४४] अतः **बालभारत** का रचनाकाल वि. सं. १२७७ से वि. सं. १२९४ के बीच माना जा सकता है ।

पद्मानन्द महाकाव्य ग्रन्थकार की दूसरी प्रसिद्ध कृति है । इसमें प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ का जीवनचरित्र वर्णित है । चूँकि मंत्री पद्म की प्रार्थना पर यह कृति रची गयी थी इसीलिये इसका नाम **पद्मानन्दमहाकाव्य** रखा गया । इसका दूसरा नाम जिनेन्द्रचरित भी है । इसमें १९ सर्ग और ६३८१ श्लोक है । इसकी कथा का आधार हेमचन्द्र द्वारा रचित **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित** माना जाता है ।

पद्मानन्द महाकाव्य का प्रथम सर्ग प्रस्तावना के रूप में है । दूसरे से छठें सर्ग तक आदिनाथ के पूर्वभवों का विवरण है, सातवें में जन्म, आठवें में बाल्यकाल, यौवन, विवाह; नवें में सन्तानोत्पत्ति, दशम में राज्याभिषेक, ११वें और १२वें में कैवल्यप्राप्ति, १४वें में समवशरण-देशना आदि, सोलहवें, सत्रहवें और अठारहवें में भरत-बाहुबलि और मरीच के वृत्तान्त के साथ अन्त में ऋषभदेव एवं भरत के निर्वाण का वर्णन है और यहीं पर कथा समाप्त हो जाती है । १९वें सर्ग में कवि ने प्रशस्ति के रूप में अपनी विस्तृत गुरु-परम्परा, काव्यरचना का उद्देश्य, मंत्री पद्म की वंशावली आदि का वर्णन किया है । कवि अमरचन्द्रसूरि ने अपनी इस कृति में भी इसके रचनाकाल का उल्लेख नहीं किया है । चूँकि यह वीसलदेव के शासनकाल में रची गयी है और इसकी वि. सं. १२९७ में लिखी गयी एक प्रति खंभात के शांतिनाथ जैन भंडार में संरक्षित है अतः यह उक्ततिथि के पूर्व ही रचा गया होगा । इस आधार पर **पद्मानन्दमहाकाव्य** वि. सं. १२९४ से वि. सं. १२९७ के मध्य की कृति मानी जाती है[४५] ।

अमरचन्द्रसूरि ने **चतुर्विंशतिजिनेन्द्रसंक्षिप्तचरितानि** नामक अपनी कृति में चौबीस तीर्थंकरों का संक्षिप्त जीवनपरिचय प्रस्तुत किया है[४६] । इसमें २४ अध्याय और १८०२ श्लोक हैं । इनके द्वारा रचित अन्य कृतियाँ भी हैं जो इस प्रकार है :

काव्यकल्पलता, काव्यकल्पलतावृत्ति अपरनाम **कविशिक्षा, सुकृतसंकीर्तन** के प्रत्येक सर्ग के अंतिम ४ श्लोक, **स्यादिशब्दसमुच्चय, काव्यकल्पलतापरिमल छन्दोरत्नावली, अलंकारप्रबोध; कलाकलाप, काव्यकल्पलतामंजरी** और **सूक्तावली** । इनमें से अंतिम चार ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं । प्रथम पाँच प्रकाशित हो चुके हैं तथा बीच के दो ग्रन्थ **काव्यलतापरिमल** और **छन्दोरत्नावली** अभी अप्रकाशित हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदर्भ :

१. थारापद्र-वर्तमान थराद, जिला बनासकांठा, उत्तर गुजरात.

२. मोढेरा-तालुका चाणस्मा, जिला महेसाणा, उत्तर गुजरात.

३. उमाशंकर जोशी-**पुराणोमां गुजरात** संशोधन ग्रन्थमाला, ग्रंथांक ७; गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद १९४६ ईस्वी, पृष्ठ १६१.
भोगीलाल सांडेसरा-**जैन आगम साहित्यमां गुजरात** संशोधन ग्रन्थमाला, ग्रंथांक ८, गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद १९५२ ईस्वी, पृष्ठ १४९.

४. यह सूचना प्रो॰ एम॰ ए॰ ढांकी से प्राप्त हुई है, जिसके लिये लेखक उनका हृदय से आभारी है ।

५. स्व॰ डा॰ उमाकान्त प्रेमानन्द शाह से प्राप्त सूचना पर आधारित ।

६. प्रो॰ ढांकी से प्राप्त व्यतिगत सूचना पर आधारित ।

७. मधुसूदन ढांकी और लक्ष्मण भोजक "शत्रुंजयगिरिना केटलाक अप्रकट प्रतिमालेखो" **सम्बोधि** वर्ष ७, अंक १-४, लेखांक १-२, पृष्ठ १४-१५.

८. मोढेरे वायडे खेडे नाणके पल्ल्यां मतुण्डके मुण्डस्थले श्रीमालपत्तने उपकेशपुरे कुण्डग्रामे सत्यपुरे टड्डायां गङ्गाहृदे सरस्थाने वीतभये चम्पायां अपापायां-पुण्ड्रपर्वते नन्दिवर्धन-कोटिभूमौ वीरः ।
"चतुरशीतिमहातीर्थनामसंग्रहकल्प" **विविधतीर्थकल्प** संपा॰ मुनि जिनविजय, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रंथांक १०, शांतिनिकेतन १९३४ ई॰ पृष्ठ ८५-८६.

९. वायडपुरे जीवितस्वामिनं श्रीमुनिसुव्रतमपरं श्रीवीरं नन्तुं चलत । "मन्त्रिउदयनप्रबन्धः" **पुरातनप्रबन्धसंग्रह** संपा॰ मुनि जिनविजय, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रंथांक २, कलकत्ता, १९३६ ई॰, पृष्ठ ३२.

१०. **अष्टोत्तरी तीर्थमाला चैत्यवन्दन** विधिपक्षगच्छस्य पंचप्रतिक्रमणसूत्राणि, वि॰ सं॰ १९८४.

११. यह सूचना प्रो॰ एम॰ ए॰ ढांकी से प्राप्त हुई है जिसके लिये लेखक उनका आभारी है ।

१२. थाराउद्दय-वायड-जालीहर-नगर-खेड-मोढेरे ।
अणहिल्लवाडनयरे व (च) ड्डावल्लीय बंभाणे ॥२७ ॥
"सकलतीर्थस्तोत्र" *A Descriptive Catalogue of Mss in the Jains Bhandars at Pattan* G. O. S. No. LXXVI, Baroda 1937 A. D. Pp. 155-156

१३. इतः श्रीविक्रमादित्यः शास्त्यवन्तीं नराधिपः । अनृणां पृथिवीं कुर्वन् प्रवर्तयतिवत्सरम् ॥७१॥
वायटे प्रेषितोऽमात्यो लिम्बाख्यस्तेन भूभुजा । जनानृण्याय जीर्णं चापश्यच्छ्रीवीरधाम तत् ॥७२॥
उद्धारस्ववंशेन निजेन सह मन्दिरम् । अर्हतस्तत्र सौवर्णकुम्भदण्डध्वजालिभृत् ॥७३॥
"जीवदेवसूरिचरितम्" **प्रभावकचरित** संपा॰ मुनि जिनविजय, सिंघीजैनग्रन्थमाला, ग्रंथांक १३, कलकत्ता १९४० ई॰, पृष्ठ ४७-५३.

१४. स निम्बो वायटे श्रीमहावीरप्रासादमचीकरत् ।
"जीवदेवसूरि प्रबन्ध" **प्रबन्धकोश** संपा॰ मुनि जिनविजय, सिंघीजैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ६, शांतिनिकेतन १९३५ ईस्वी सन्, पृष्ठ ७-९.

१५. M. A. Dhaky—*Vayata Gaccha and Vayatiya Caityas* Unpublished.

१६. "जीवदेवसूरिचरितम्" श्लोक १-४६,
प्रभावकचरित पृष्ठ ४७-४८.

१७. वही, श्लोक ११८ और आगे.

१८. *Padmananda Mahakavya* Ed. H. R. Kapadia, G. O. S. No. L VIII, Baroda 1932 A. D. Prashasti, Pp. 437-446.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

19. गौरेक पतिता कथञ्चन मृता श्रीब्रह्मशालान्तरे न म्लेच्छाः प्रविशन्ति तत्र न मृतं कर्षन्ति विप्राः पशुम् ।
धर्माधार ! कृपाधुरीण ! तरसा तस्मान्महाकश्मला-दसमानन्यपुरप्रवेशकलयैवोत्कर्षतः कर्षः तत् ॥१९॥
वही, प्रशस्ति, श्लोक १९, पृष्ठ ४४०.

२०. वही, श्लोक ३६-३८.

२१. मोहनलाल दलीचंद देसाई-**जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास** बम्बई १९३३ ई॰ स॰, पृष्ठ ३४१, कंडिका ४९६.

२२. संपा॰ मुनि जिनविजय, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रंथांक ३२, बम्बई १९६१ ई॰ स॰

२३. अथाचलन् वायटगच्छवत्सलाः, कलास्पदं श्रीजिनदत्तसूरयः ।
निराकृतश्रीषु न येषु मन्मथः, चकार केलिं जननी विरोधतः ॥
सुकृतसंकीर्तन सर्ग ५, श्लोक ११.

२४. आस्ति प्रीतिपदं गच्छो, जगतः सहकारवत् ॥
जनपुंस्कोकिलाकीर्णो, वायडस्थानकस्थितिः ॥१॥
अर्हन्मतपुरीवप्र-स्तत्र श्रीराशिलः प्रभुः ॥
अनुल्लङ्घ्यः परैर्वादि-वीरैः स्थैर्यगुणैकभूः ॥२॥
गुणाः श्रीजीवदेवस्य, प्रभोरद्भुतकेलयः ॥
विद्वज्जनशिरोदोलां यन्नोज्झन्ति कदाचन ॥३॥
विवेकविलास संपा॰ भृगुभाई फतेहचंद कारबारी, बम्बई १९१६ ई॰ स॰ प्रशस्ति, श्लोक १-३

२५. मंदारमंजरिं पिव सुरवि सवणावयं सयं णिंति ।
पागयपबंधकदूणो वाणिं **सिरिजीवदेवस्स** ॥११॥
सुपासनाहचरिअं संपा॰ एवं संस्कृतभावानुवादक पं॰ हरगोविन्ददास त्रिकमचंद सेठ, प्रथम भाग, जैन विविध साहित्य शास्त्रमाला, ग्रंथांक ४, बनारस १९१८ ई॰ स॰, मंगलाचरण, पृ॰ १

२६. सिरिजीवदेवसूरिं वंदे जस्स प्पबंधकुसुमरसं ।
आसाईऊण सुचिरं अज्ज वि मज्जंति कविभसला ॥
वासुपूज्यचरित प्रशस्ति
C. D. Dalal and L. B. Gandhi—*A Descriptive Catalogue of Manuscripts* in The Jain *Bhandars at Pattan* vol I, G. O. S. No-LXXVI, Baroda 1937 A. D., Pp. 140-142.

२७. **तिलकमंजरी** संपा॰ पं॰ भवदत्तशास्त्री एवं काशीनाथ पाण्डुरंग परब, काव्यमाला-८५, **मुम्बई** १९०३ ई॰ स॰, मंगलाचरण, पृष्ठ ३.

२८. **जिनस्नात्रविधिः पञ्जिकयासहितः** संपा॰ पं॰ लालचंद भगवानदास गांधी, **बम्बई** १९६५ ई॰ स॰,

29. U. P. Shah—"A Forgotten Chapter in the history of Śvetambar Jaina Church" **J. O. A. S. B.** Vol. 30, part I, 1955 A. D., Pp. 100-113.

३०. पूरनचन्द नाहर-संपा॰ **जैन लेखसंग्रह** भाग ३, कलकत्ता १९२९ ई॰ स॰, लेखांक २२३२.

३१. मुनि जिनविजय-संपा॰ **प्राचीनजैनलेखसंग्रह** भाग २, भावनगर १९२१ ई॰ स॰, लेखांक ५२३.

३२. **जिनस्नात्रविधि** संपा॰ पं॰ लालचंद भगवानदास गांधी, जैन साहित्य विकास मंडल, मुम्बई १९६५ ई॰ स॰

३३. वही

३४. प्रो॰ एम॰ ए॰ ढांकी से प्राप्त व्यतिगत सूचना पर आधारित.

३५. **विवेकविलास** संशोधक एवं संपादक : भृगुभाई फतेहचंद कारबारी, प्रकाशक-मेघजी हीरजी बुकसेलर, मुम्बई १९१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ई॰ स॰,

३६. द्रष्टव्य-संदर्भक्रमांक २४.

३७. मोहनलाल मेहता और हीरालाल रसिकलाल कापडिया — जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग ४, पार्श्वनाथ विद्याश्रम ग्रन्थमाला-१२, वाराणसी १९६८ ई॰, पृष्ठ २१७.

३८. भोगीलाल सांडेसरा-**वस्तुपाल का साहित्य मंडल और संस्कृत साहित्य को उसकी देन;** पृष्ठ ८९.

३९. राजवली पाण्डेय-**हिन्दुधर्मकोश** लखनऊ १९८८ ई॰, पृष्ठ ५१३-१४.

४०. मेहता और कापडिया, पूर्वोक्त, पृष्ठ २१७.

४१. अम्बालाल प्रेमचन्द शाह-**जैन साहित्य का बृहद् इतिहास** भाग ५, पार्श्वनाथ विद्याश्रम ग्रन्थमाला १४, वाराणसी १९६९ ई॰, पृष्ठ १९७.

42. H. R. Kapadia. *Padmananda Mahakavya* Introduction, Pp 31-33.
श्यामशंकर दीक्षित-**तेरहवीं चौदहवीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य** जयपुर १९६९ ई॰ स॰, पृष्ठ २५४-२५६.

४३. **प्रबन्धकोश** "अमरचन्द्रकविप्रबन्ध" पृष्ठ ६१-६३.

४४. सांडेसरा, पूर्वोक्त, पृष्ठ ८९.

४५. दीक्षित, पूर्वोक्त, पृष्ठ ३०३-३०४.

४६. गुलाबचंद चौधरी-**जैन साहित्य का बृहद् इतिहास** भाग ६, पार्श्वनाथ विद्याश्रम ग्रन्थमाला, ग्रंथांक २०, वाराणसी १९७३, ई॰ स॰, पृष्ठ ७६-७७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org